E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2022; 4(2): 21-23
Received: 12-02-2022
Accepted: 15-03-2022

डॉ. अवधेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अवधेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

आदिवासी जीवन पर भूमंडलीकरण का प्रभाव ('ग्लोबल गाँव के देवता' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अवधेश कुमार

प्रस्तावना

20वी सदी के अंतिम दशक में भारत में उपजी भूमंडलीकरण की अवधारणा आज सम्पूर्ण विश्व में अपनी ज़मीन स्थापित कर चुकी है। भूमंडलीकरण ने मनाव समाज को संर्वांगीण रूप से प्रभावित किया है। इसके द्वारा जहां एक ओर विकास हुआ तो वहीं इसने व्यक्ति की मानसिकता को बोना भी बनाया है। मनुष्य के जीवन से प्रेम या दया नाम की भावना का ह्रास हो चुका है और अर्थकेंद्रित मानसिकता पनपने लगी है। इसके द्वारा मनुष्य जीवन में जो बदलाव हुये हैं उन्हें साहित्य के माध्यम से उभारा गया है। "हिन्दी साहित्य के संदर्भ में देखें तो कविता तथा कथा-साहित्य में वैश्वीकरण का प्रभाव विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। नए से नया और पुराने से पुराने कवि भी आज भूमंडलीकृत स्थितियों से विचलित हो उठे हैं और अपनी कविताओं में विभिन्न बिंबों, प्रतिकों, मिथकों आदि के माध्यम से चित्रित कर रहे हैं।" भूमंडलीकरण का कोई एक पक्ष ऐसा नहीं जो हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित न हुआ हो। भूमंडलीकरण के आगमन से मनुष्य के मूल्य धाराशायी हो गए। इस ओर समकालीन उपन्यासकारों का ध्यान गया तो उन्होंने सामाजिक स्तर पर कार्य करना शुरू किया। चूंकि भूमंडलीकरण के कारण तकनीक और टेक्नोलोजी का अत्यधिक विकास होने लगा और इस भौतिकतावाद से मानवता का ह्रास होना शुरू हो गया। यही कारण है कि भूमंडलीकरण की नई अवधारणाएँ साहित्य के बीच अपना स्थान बनाने लगी। हिन्दी उपन्यास में भूमंडलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध बड़े स्तर पर दिखाई देता है। 1990 में भूमंडलीकरण का विकास बहुत तेज़ गति से हुआ। यह ऐसा समय था जब विमर्शों का उभार हो रहा था, इन विमर्शों में स्त्री, दलित और आदिवासी वर्ग मुख्य धारा में आने के लिए लगातार संघर्षरत थे। भूमंडलीकरण का सबसे अधिक प्रभाव 'आदिवासी समाज' पर पड़ा। चूंकि यह ऐसा समय था, जब पर्यावरण व प्रकृति को लेकर बड़ा परिवर्तन हो रहा था और इन परिवर्तन को लेकर लंबी बहसें चल रही थीं। इन बहसों को देखते हुये समकालीन साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आदिवासी समाज अथवा आदिवासियों के प्रति अपनी सहानुभूति और स्वानुभूति रखने वाले लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से आदिवासी समुदाय की समस्याओं को समाज के सामने रखने का प्रयास किया। 'आदिवासी' जिन्हें अपने मूल में परिवर्तन करने के लिए हमेशा प्रताड़ित किया जाता रहा है और वह ऐसा जीवन जीने लिए अभिशप्त हैं।

आदिवासी जीवन को उद्धृत करने अथवा भूमंडलीकरण से उनके जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को सपूर्ण रूप से चित्रित करने वाले उपन्यासों में प्रमुख है- 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'गायब होता देश' - रणेन्द्र, 'हिडिंब' - एस. आर. हरनोट, 'पाँव तले की डूब', 'धार', 'जंगल जहां शुरू होता है'- संजीव, 'जहां बांस फूलते हैं'-श्री प्रकाश मिश्र, 'रेत' - भगवानदास मोरवाल, 'अल्मा कबूतरी' - मैत्रेयी पुष्पा आदि।

अस्मितापरक उपन्यास लेखन में अक्सर सहानुभूति और स्वानुभूति की बात की जाती है और ऐसा माना जाता है कि स्वानुभूती के आधार पर लेखक पीड़ा को अधिक संवेदना के साथ व्यक्त करने में सक्षम होता है। इस संदर्भ में कई बहसें हुई हैं। स्वानुभूति की स्थिति को रणेन्द्र द्वारा खारिज होते हुए देखा जा सकता है। रणेन्द्र ने गैर आदिवासी होते हुए आदिवासी समाज का चित्रण पूरी ईमानदारी और निष्ठा से किया है।रणेन्द्र 1992 में झारखंड में कार्यरत थे। अपनी नौकरी के दौरान उन्हें झारखंड में निवास करने वाली आदिवासी जातियों को करीब से देखने का मौका मिला। रणेन्द्र आदिवासी न होते हुये भी आदिवासी समाज की पीड़ा को बहुत ही गहराई से समझते हैं। आदिवासी जातियों के बीच रहकर उनकी जिंदगी और उस जिंदगी में आने वाली हर रोज़ की नई समस्या को उन्होंने सामने से महसूस किया जिसके बाद उन्होंने अपनी लेखनी का विषय आदिवासी जीवन को बनाया। भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समुदायों के जीवन में हो रहे सामाजिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक परिवर्तन की बारीकी से पड़ताल की है और अपने उपन्यासों में उन समस्यों को उजागर किया जिसकी मार आदिवासी समुदाय झेल रहा है। आदिवासियों का जीवन जल, जंगल और ज़मीन से जुड़ा होता है वर्तमान समय में विकास के नाम पर उन्हें जंगलों से खदेड़ा जा रहा है। उन्हीं के अधिकार क्षेत्र में घुस कर उन्हीं को बाहर का रास्ता दिखाया जा रहा है। आदिवासियों की समस्याओं को ज़मीनी स्तर पर देखते हुए रणेन्द्र ने आदिवासी समुदाय के दर्द को उजागर करने में सफल भूमिका निभाई है। अशिक्षा, बेरोजगारी, विस्थापन, घुसपैठ, स्त्री-शोषण, धार्मिक-भाषिक अस्मिता जैसे प्रश्नों को 'ग्लोबल गाँव के देवता' में बड़ी सहजता के साथ उठाया है।

रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी 'असुर' जाति का उल्लेख करते हुए उनके साथ हो रहे अत्याचार और उनके साथ किया जा रहा भेदभाव पूर्ण व्यवहार, उनके प्रति हेय दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इन्हीं सब समस्याओं को करीब से देखते हुए रणेन्द्र ने आदिवासी समाज को देखने का नया दृष्टिकोण प्रदान किया है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' झारखंड की पृष्ठभूमि से उपजी रणेन्द्र की महत्वपूर्ण रचना है। आदिवासी सामज हाशिये का समाज है। उपन्यास में आदिवासी समाज की असुर जाति के दु:ख-दर्द को व्यक्त करते हुए उनके शोषण को चित्रित किया है। यह असुर जाति के संघर्षों का दस्तावेज़ है। आदिवासी असुर जाति के जीवन संघर्ष एवं अस्तित्व के संदर्भ में उपन्यास के फ्लैप पर उल्लेख मिलता है,"शताब्दियों से संस्कृति और सभ्यता की पता नहीं किस छन्नी से छन कर अवशिष्ट के रूप में जीवित रहने वाले असुर समुदाय की गाथा पूरी प्रामाणिकता व संवेदनशीलता के साथ रणेन्द्र ने लिखी है। आग और धातु की खोज करने वाली, धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाली कारीगर असुर जाति को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है।'ग्लोबल गाँव के देवता' असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। हाशिए के मनुष्यों का सुख-दु:ख व्यक्त करता यह उपन्यास झारखंड की धरती से उपजी महत्त्वपूर्ण रचना है।असुरों की अपराजेय जिजीविषा और लोलुप-लुटेरी टोली की दुरभिसन्धियों का हृदयग्राही चित्रण।" अत: असुर समुदाय सदियों से शोषण का शिकार होते आ रहे हैं। रणेन्द्र ने असुर जाति के संघर्षों का निर्मम चित्र रेखांकित किया है जो अपनी नियति के खिलाफ लड़ रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं। उपन्यास में असुर जाति का जो संघर्ष दिखाया गया है, सिर्फ असुर जाति का ही नहीं बल्कि विश्वभर के आदिवासी समुदाय के संघर्ष को उजाकर किया है। आज जिस शोषण का शिकार झारखंड की असुर जाति होती है, उसी तरह विश्व के अन्य क्षेत्र में स्थित आदिवासी जैसे- अमेरिकी महाद्वीप में इंका, माया, एज़टेक और रेड इंडियंस का भी शोषण होता है। उनको असहिष्णु और बर्बर कह कर हत्याओं के घाट उतार दिया जाता है। असुर यानि एक तरह के दानव जो दिखने में भयंकर और खतरनाक होते हैं। यही मिथ्य समाज में चारों तरफ फैला है। इस मिथ्य को लेखक ने अंचल (भौरांपाट) में विज्ञान शिक्षक के रूप में नियुक्त होकर आए मुख्यधारा के सदस्य युवा मास्टर के माध्यम से उजागर किया है। मास्टर की भेंट अम्बाटोली के गोरे-चिट्टे आदमी लालचन असुर से होती है तो वह सोचता है कि,''सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किन्तु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लम्बे-चौड़े, काले-कलूटे, भयानक, दाँत-वाँत निकले हुए, माथे पर सींग-वींग लगे हुए लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सब उलट-पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलटी घूम रही थीं।'' अत: असुर नाम आते ही दिमाग में एक चित्र खींचता है जिसमें एक लंबा चोड़ा, बड़े दाँत वाला काला आदमी आँखों के सामने खड़ा दिखाई देता है। असुर जाति को लेकर फैली यह भ्रांति टूटती सी नज़र आती है। प्राचीन समय से ही असुर को लेकर फैली इस संकुचित मानसिकता को रणेन्द्र उजागर करते हैं। सत्ताधारियों द्वारा असुर का यह चरित्र-चित्रण समाज में भेदभाव की नीति को बढ़ावा देती है। अपने एक लेख में मैनेजर पाण्डेय इस संदर्भ में लिखते हैं, 'प्रभुत्वशाली सत्ताएँ जिनका विनाश करना चाहती हैं उनका पहले दानवीकरण करती हैं, फिर उन पर हमला करती हैं और बाद में उनकी ज़मीन तथा जीवन पर कब्जा करती हैं। भारत में यह प्रक्रिया वैदिक काल से लेकर आज तक चल रही है। यही प्रक्रिया अमरीका में कोलम्बस के समय से जॉर्ज बुश के समय तक, अमरीका के मूल निवासी रेड इंडियन से आरंभ होकर सद्दाम हुसैन तक चलती दिखाई देती है।'अत: दानवीकरण की यह प्रक्रिया आज भी निरंतर रूप से चल रही है। इस प्रक्रिया के निरंतर रूप से चलने के पीछे रूढ़िगत मानसिकता काम करती है। चूंकि कोई भी व्यक्ति या समाज अपने से आगे किसी अन्य को नही देख सकता। असुर जाति के साथ किया जा रहा है यह दानवीकरण, उनके जिज्ञासु होने की प्रवृति और अविष्कार करने की क्षमता के कारण आज भी चल रही है।

आदिवासी समाज प्राकृति प्रेमी है। प्राकृति से उनका प्रेम अटूट और विश्वशनीय है। जल, जंगल, ज़मीन और जीव-जंतुओं के सहारे ही जीवन यापन करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. शिवकुमार तिवारी का मत है कि, "जनजातियों का जीवन प्रकृति की गोद में बीतता है। अत: प्रकृति के तत्वों की पूजा या अर्चना उनके धर्मों में मिलना नितांत स्वाभाविक है।" आदिवासियों का संपूर्ण जीवन प्रकृति की गोद में ही बीतता है। आदिवासियों का प्रकृति के साथ तदात्मय स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। आदिवासी और प्रकृति के संबंध को रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में इस प्रकार उद्धृत किया है, "अखड़ा में पर्व-त्यौहार, सरहुल, हारियाली, सोहराय पर रात भर माँदर बजता। रातभर गांव-गाँव से जवान लड़के जुटते। लकड़ियाँ जुटती झूमर, जदुरा के बोलों पर रात भर चाँद नाचता। सखुआ और पलाश नाचता। कनेर और अमलतास नाचता। नदी-झरना पहाड़ नाचते। एक साथ पूरी प्रकृति नाचती।" बिना स्वच्छंद प्राकृतिक वातावरण के आदिवासी सामज की कल्पना करना असंभव है। जिस जंगल और ज़मीन के दावेदार आदिवासी आदिम समय से रहे हैं, उनकी पहचान ही जंगलो में रहने वाले वासी के नाम से ही की जाती है। परंतु वर्तमान समय में सरकार उन्हीं के अधिकार क्षेत्र से उन्हें ही दूर कर रही है। इस स्थिति पर रणेन्द्र लिखते हैं, "वन विभाग असुरों और आदिवासियों को अपने क्षेत्र में घुसपैठिया मानता है। वह यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि वन गाँवों में लोग सैकड़ों वर्षों से रहते आये हैं। वन विभाग ही बाद में आया है। वनस्पतियों और जीवों की तरह आदिवासी-आदिम जाति भी जंगल के स्वाभाविक बाशिंदे हैं। यह स्वीकार करने से उनकी पढ़ाई रोकती है।" जंगल में रहने वाली यह आदिवासी जाति भले ही आदिम समय से जंगलों में रहने का दावा करती है लेकिन उसके वजूद को खत्म करने वाले वन विभाग के अधिकारी उसके लिए खतरा बने हुये हैं। उनको जंगलों से बाहर करने के लिए सरकार या बड़े-बड़े औद्योगपति हर संभव कोशिश करते दिखाई देते हैं फिर चाहे इसकेलिए उन्हें मानवीय भावना का गला ही क्यूँ न घोटना पड़े। झारखंड की असुर जातियों के सामने जानबूझ कर संकट की स्थिति पैदा की जाती है। लालचनअपनी इस पीड़ा को शिक्षक को बताता है कि, "पिछले पच्चीस-तीस सालों में खान-मालिकों ने जो बड़े-बड़े गड्ढे छोड़े हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी।" गड्ढो में पानी भरने से कई तरह की बीमारियाँ फैलने लगती हैं। उनके बीच फैलती बीमारी को लेकर सरकार हो या मील मालिक किसी का ध्यान नहीं जाता। कोई उनकी इस समस्या को दूर करने के बारे में नहीं सोचता। इन मील मालिकों की नज़र में तो असुर ही एक तरह की बीमारी है जिसे वह घृणा की दृष्टि से देखते हैं। जिन प्राकृतिक संसाधनों पर आम व्यक्तियों का अधिकार होता है सरकार ने उन आवश्यक संसाधनों का निजीकरण तक कर दिया। भूमंडलीकरण के कारण सरकारें अपनी स्वार्थ पूर्ति के चक्कर में निजीकरण की प्रक्रिया को अपना रही है। निजीकरण की यह प्रक्रिया भी आदिवासियों के शोषण का एक कारण है। रणेन्द्र ने सरकार की निजीकरण करने वाली मानसिकता को इस प्रकार उद्धृत किया है, "छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले से होकर बहने वाली एक बड़ी नदी शिवनाथ एक इंडस्ट्री समूह को बेच दी गई थी। उसका निजीकरण हो गया। कई-कई गाँव के लोग, मवेशी, चिरई-चुनमुन, खेत-बघार सब पानी के लिए छछन रहे थे।" प्राकृतिक संसाधनों पर जहां स्थानीय लोगों का अधिकार होना चाहिए वहाँ सरकारे निजीकरण की प्रक्रिया अपना कर उनके अधिकारों की अवहेलना कर रही है।

आदिवासी असुर जाति सदियों से शोषण का शिकार हो रही है। सरकार की उपेक्षा और अनदेखी ने उनका जीवन अंधकारमय बना दिया है। राजनीति के थपेड़ों को झेलते हुये विभिन्न समस्याओं को झेल रही है। उन्हें न पानी नसीब होता है, न बिजली, न ही ठीक से खाने के लिए भोजन मिलता है। विकास के नाम पर उन्हें ठगा जा रहा है। नेताओं द्वारा उन्हें दिन-ब-दिन छला जा रहा है।

आदिवासी समाज के शोषण को रणेन्द्र इस तरह उजागर करते है, "हमारा बाक्साइड यहां से डेढ़-दो सौ किलोमीटर दूर जहां प्रोसेस होकर अलुमिनियम में ढलता है, वह जगह सिल्वर सिटी ऑफ इंडिया कहलाती है।...फूलों पार्कों से लदी हरी-भरी खूबसूरत कॉलोनी। एक से एक स्कूल, चमचमाते बाजार, क्लब, घर....लगा इंद्रलोक धरती पर उतरा आया हो। और यहाँ पाट में अब तो आप आ ही गए हैं मास्टर साहब। धीरे-धीरे सब जान जाइएगा। पानी और जलावन जुटाने में

ही हमारी औरतों कीआधी जिंदगी गुज़र जातीहै। बरसात के गिंजन का तो मत पूछिये। बन्द खदान के सैकड़ों गड्ढे विशाल पोखरों में बदल जाते हैं। कीचड़ में लोटते सूअरों और हमारे बच्चों में फर्क करना मुश्किल हो जाता है। वहाँ के गेस्ट हाउस में छत्तीस तरह के व्यंजन...क्या खाएँ –क्या नही खाएं!..... हमारे ज्यादातर घरों में भात-दालसब्जी भी पर्व-त्योहार का भोजन है।" हमेशा से शोषण का शिकार होने वाली असुर जाति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। औद्योगीकरण की नीति और राजनीति ने उनकी अस्मिता के साथ दुर्व्यवहार किया है। सरकारें इनके प्रति झूठी हमदर्दी रख हैं। राजनेताओं और औद्योगपतियों की चालाकी और गंदी राजनीति को समझते हुये रुनझुन कहती है कि,"हमारी जाति-विनाश की एक झलक मात्रहै इस कहानी में। हम वैदिक काल के सप्तसिन्धु के इलाक़े से लगातार पीछे हटते हुए आज़मगढ़, शाहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते इस वन-प्रान्तर कीकट, पौंड्रिक, कोकराहट या चुटिया नागपुर पहुंचे। हाजारों सालों में कितने इंद्रों, कितने पांडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किये, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोककथाओं और मिथकों में हम जिन्दाहैं।" आदिवासी समाज का इतिहास वैदिक काल से है और वैदिक काल से ही अपनी अस्मिता और पहचान के लिए कितने ही संघर्ष किए उनका आज तक कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। आदिवासी जनजातियाँ इतिहास के पन्नो में न होकर सिर्फ लोक-कथाओं में ही दिखाई देती हैं।

आदिवासी जनजातियों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। उनको शिक्षा प्राप्त करने के लायक नही समझा जाता। उनके अधिकारों का हनन किया जाता है और उन्हें शिक्षा से दूर रखा जाता है। शिक्षा के अभाव में वह अपने अधिकारों को जान ही नहीं पाते। उपन्यास की प्रिंसिपल मिंज मैडम है लेकिन फिर भी वह लड़कियों की शिक्षा के लिए 'पीटीजी गर्ल्स रेज़िडेंशियल स्कूल' में कोई प्रयास नहीं करती। 'लालचन असुर' और 'रुमझुम असुर' लड़कियों की शिक्षा के प्रति चिंतित रहते हैं इस संदर्भ में शिकायत किए जाने पर बच्चियों को ढूंढ कर लाने और टेस्ट द्वारा प्रवेश देने की बात वह कहती हैं। मेस-व्यवस्था में सुधार करने के प्रश्न पर भी उनका गैर-जिम्मेदाराना और हेय दृष्टिकोण उभरकर सामने आ जाता है,"इन मकई के घट्टा खाने वालों को यहाँ भात-दाल मिल जाता है, वही बहुत है। आप अपने हिसाब से क्यों सोचते हैं ? कौन इन्हें अपने घरों में खीर-पूड़ी भेंटाता है कि आप मेस-व्यवस्था में सुधार के लिए मरे जा रहे हैं।" आदिवासी लड़कियों के प्रति प्रिंसिपल का हेय दृष्टिकोण बेहद निकृष्ट है। लड़कियों को शिक्षा से दूर रखा जाता है कि वह अपने हित-अहित के बारे में न समझ सके। यदि आदिवासी स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार दिया जाए तो वह भी अपने हितानुसार निर्णय लेने में सफल हो सकेंगी। जिससे उनके साथ हो रहे शोषण का वह विरोध कर सकें। रणेन्द्र ने गोलोबल गाँव के देवता में आदिवासी जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि, 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास आदिवासी समाज का मार्मिक दस्तावेज़ है। उपन्यास में असुर जाति की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थियों को करीब से देखते हुये उनके जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है। असुर जाति की अस्मिता एवं पहचान को लेकर रणेन्द्र ने जो प्रश्न उठाए हैं, उससे आदिवासियों के प्रति उनकी चिंता और संवेदना ज़ाहिर होती है। भूमंडलीकरण का फैलाव आदिवासियों की जिंदगी में जहर की तरह घुल रहा है जो उनकी जिंदगी में कई तरह की समस्याओं को जन्म देती है। आदिवासियों का यह शोषण जल, जंगल और ज़मीन छिनने तक ही सीमित नहीं बल्कि उनका यह शोषण मानसिक और यौन स्तर तक जाता है। उपन्यास में ऐसी कई परते खुलती हैं जिनमें स्त्रियों के यौन-शोषणा का भी चित्रण लेखक ने किया है। शोषण के सभी जघन्य रूपों का उल्लेख उपन्यास में हुआ है। आदिवासियों के प्रति सरकार का जो गैर-जिम्मेदारना रवैया है उसक चित्रण भी रणेन्द्र ने पूरी ईमानदारी से किया है। झारखंड की असुर जाति के संघर्ष के साथ अन्य देश के आदिवासियों के संघर्ष का भी वर्णन किया है।

अत: कह सकते हैं कि रणेन्द्र ने बिना किसी लाग-लपेट के असुर जाति के दु:ख-दर्द को ब्याँ किया है। भूमंडलीकरण में 'वैश्विक गाँव' बनाने की होड़ में आदिवासियों की अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। जिसका चित्रण रणेन्द्र ने सफलता पूर्वक किया है। अंतत: यह भी कहा जा सकता है कि किसी भी हाशिये के समाज का जमीनी स्तर पर संवेदनात्मकस्तर पर उल्लेख करने के लिए स्वानुभूत होना आवश्यक नहीं है उसके लिए ज़रूरी है विचारों का परिपक्व होना।

संदर्भ

1. सिंह, पुष्पपाल. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास. नई दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन. 2015, 73.
2. रणेन्द्र.: ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली.भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. उपन्यास के फ्लैप से उद्धृत, 2019.
3. रणेन्द्र.: ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 11.
4. तिवारी, डॉ. शिवकुमार. भारत की जनजातियाँ. नई दिल्ली. नॉर्थन बुक सेंटर. 1992, 113.
5. रणेन्द्र.: ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.2019, 26.
6. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 79.
7. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 13.
8. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 91.
9. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 16-17.
10. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 43.
11. रणेन्द्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नई दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. 2019, 20.